गुरुजी, गुरुजी, गुरुजी

एक केवल विधाता ही अपने संतों के साथ आत्मीय एवं अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करते हैं और उनके संत अपने आराध्य के साथ। यद्यपि लाखों गुरुजी से अवगत हैं, फिर भी हम उनके बारे में अत्यंत कम जानते हैं। वास्तव में व्यक्ति स्वरूप गुरूजी के बारे में तो हमारा ज्ञान शून्य से अधिक कुछ भी नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उनकी अभिलाषा के अनुसार है। आध्यात्मिक कथाएं मात्र जिज्ञासुओं के लिए नहीं हैं, क्योंकि आध्यात्मिकता केवल जिज्ञासा का प्रसंग नहीं है। वास्तव में यह एक अत्यंत गूढ़ विषय है, जिसको समझने के लिए बहुत उद्यम और सतत परिश्रम की आवश्यकता है।

गुरुजी के जीवन की जानकारी इतनी सीमित है कि उसे मात्र रूपरेखा ही कह सकते हैं। जो रूपरेखा हमारे समक्ष है उसे पूर्ण विश्वसनीयता के साथ सत्यापित नहीं किया जा सकता है क्योंकि समय के साथ याददाश्त पर विश्वास करना कठिन हो जाता है - प्रसंग कहानियाँ बन जाते हैं और कहानियाँ और लम्बी लोक कथाएँ। इस आधार पर जो हमें ज्ञात है वह वर्णित है।

गुरुजी दिव्य ज्योत थे जिनका जन्म ०७ जुलाई १९५४ को पंजाब की मलेरकोटला तहसील के डुगरी गांव में हुआ था। पंजाब सदा से सिख गुरुओं का पुण्य स्थल रहा है। जैसे यीशु मसीह के जन्म पर तीन ज्ञानी पुरुष पहुँच गए थे, गुरुजी के जन्म पर सर्प दिखे थे - एक प्रमुख किन्तु अद्भुत संयोग जो उनकी वास्तविकता से अवगत कराता है। वह शिव थे और हैं, जिनका चित्रण उनके नीले कंठ और हाथ में लिपटे हुए सांपों से दृष्टिगोचर होता है - यह भी सत्य है कि कुछ अनुयायियों ने उनका यह रूप देखा है।

डुगरी कृषि प्रधान ग्राम था और गुरुजी का बचपन भी उसी वातावरण में व्यतीत हुआ। उनके पिता बताते हैं कि उनका छोटा पुत्र अक्सर खेती में सहायता करता था। जब भी ऐसा होता था, उनके खेत की पैदावार आस पास के खेतों से कई गुना अधिक होती थी। गुरुजी अक्सर निकट ही संत सेवा दासजी के डेरे पर मिलते थे, उनके परिवार के सदस्यों की इच्छा के विपरीत, जो चाहते थे कि गुरूजी अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान दें। उनकी इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति को रोकने के लिए उनको कभी कभी कमरे में बंद कर दिया जाता था। फिर भी गुरुजी डेरे पर संतों के साथ बैठे हुए मिलते थे, जहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी आते थे। भविष्यद्रष्टा संत लोगों को सजग करते थे कि गुरुजी को अकेला छोड़ दें क्योंकि वह "तीनों लोकों के स्वामी" हैं।

इन शब्दों की महत्ता - कि गुरुजी त्रिलोकीनाथ हैं - उस समय भी, या दशकों उपरान्त, जब उनके भक्तों की संख्या बहुत बढ़ गयी, समझ में नहीं आई। किन्तु देवत्व कभी छिपा नहीं रह सकता, क्योंकि कष्ट निवारण तो उसकी प्रवृत्ति है। उनके बचपन के एक दृष्टान्त के अनुसार उनके एक सहपाठी का पेन परीक्षा से पूर्व टूट गया था। गुरुजी ने उसको अपना पेन दे दिया जिससे उसने अपनी परीक्षा पूर्ण करी, और गुरुजी ने उस टूटे पेन से सफलतापूर्वक

अपने उत्तर लिखे। यह उनकी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं थी - उनके अनुसार गुरुजी को परीक्षाओं में आने वाले प्रश्न पहले से ही पता होते थे! उनके अध्यापक शिष्य की कक्षा से अचानक थोड़ी देर के लिए अंतर्ध्यान हो जाने की घटनाओं से सदा विस्मित रहते थे।

गुरुजी अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए पढ़ते रहे, जो अन्य सामान्य अभिवावकों के समान चाहते थे कि उनका पुत्र एम ए की उपाधि प्राप्त कर ले। गुरुजी ने अंग्रेजी और अर्थ शास्त्र में दो उपाधियाँ प्राप्त करीं।

कुछ समय के उपरान्त गुरुजी ने इस संसार में अपनी आध्यात्मिक यात्रा के लिए घर छोड़ दिया। वह अक्सर अपने किसी परिचित के घर पर प्रकट हो जाते थे, कुछ दिन रहते थे और फिर या तो चल पड़ते थे या कई दिनों के लिए लुप्त हो जाते थे। उनके माता पिता समझ गए कि उनका पुत्र कोई साधारण पुरुष नहीं है। उनकी माँ अन्य भक्तों की भांति उनको "गुरुजी" से संबोधित करती थीं और उन्हें सत्संगों में अक्सर गुरुजी के पैर छूते हुए देखा जा सकता था। यदि कोई भक्त निडर हो कर उनका नाम पूछ भी लेता था, तो गुरुजी उसको एक छोटा किन्तु अर्थसंगत उत्तर देते थे, कि उन महापुरुषों के कोई नाम नहीं होते। इस कथन का अभिप्राय मात्र इतना होता था कि उनके व्यक्तित्व के समान स्वयं ब्रह्म में ही समाहित है, दोनों एक ही हैं। नाम के लिए जिस भिन्नता की आवश्यकता होती है, उसका लोप हो चुका है। एक निजी मानव शरीर होते हुए भी वह व्यक्तित्वहीन और अंतर्यामी थे।

तत्पश्चात उस शरीर का उद्देश्य मानवता को उसके दुखों और कष्टों से छुटकारा दिलाना हो गया। लोग, बड़ी संख्या में गुरुजी के पास अपनी समस्याओं से मुक्त होने के लिए पहुंचने लगे - अधिकांशतः आर्थिक, गृहस्थी, व्यवसाय और व्यापार, कर्मजनित रोगों से संबंधित होती थीं। शीघ्र ही उनकी प्रतिभा समूचे पंजाब में फैल गयी और लोगों ने उनको ढूंढ निकाला। गुरुजी सदा कहते रहे कि "असल चीज़ तो कोई मंगदा नहीं"। वह तो दिव्यता के मूर्त रूप थे और उनकी इच्छा थी कि लोग उनके पास प्रेम के लिए, केवल प्रेम के लिए आएं। नम्रतापूर्वक समर्पित प्रेम से वह अकल्पनीय, असंभव वस्तुएँ तक देने में सक्षम थे। गुरुजी तो दाता थे; उनकी न कोई आशा थी न ही उन्होंने किसी से कभी कुछ ग्रहण किया।

गुरुजी विभिन्न स्थानों पर रहे - जालंधर, चंडीगढ़, पंचकूला और नयी दिल्ली - और सत्संगों की नदी, पवित्र गंगा की भांति इन बंजर, भौतिकवाद से तप्त प्रदेशों में, बहने लगी। यही स्थान थे जहाँ पर लोग न केवल पूरे भारत से, अपितु समस्त विश्व से उनके आशीर्वाद लेने के लिए आने लगे। गुरुजी के सत्संगों में वितरित होने वाले चाय और लंगर प्रसाद उनके परम आशीर्वाद से संपन्न थे। उनके द्वार सबके लिए खुले थे, चाहे वह उच्च या निम्न, अमीर या गरीब, पड़ोसी या विदेशी हो। स्वयं दिव्यता से परिपूर्ण, उनके लिए सब एक समान थे और अपने भक्तों को भी ऐसा ही पालन करने को कहते थे। उन्होंने भक्तों को शंकाओं से उत्पन्न, व्यर्थ के अंधविश्वास एवं निराधार परम्पराओं को त्यागने को कहा। उनका कथन था

कि सब ईश्वर से प्रेम करें, सब धर्म समान हैं और उन सबका मूल एक ही है। एक परमेश्वर है और मानवता का एकमात्र स्वरूप विश्व बंधुत्व का है। अतः, इस तर्क पर, जाति और मत के आधार पर कोई अंतर संभव नहीं हैं। ज्योतिष और अज्ञानता पर आधारित उपाय उनको अस्वीकार थे। वह अपने भक्तों को अपने कर्मों को समाप्त करने में सहायता करते थे; यह जानते हुए भी कि उनके शरीर को हानि भी होती है वह अधिक बुरे कर्म अपने पर अंतरित कर लेते थे। उनके और उनके अनुयायियों के लिए, संगत, उनके भक्तों की सभा, सर्वोच्च थी।

बदले में, उनको अपने अनुयायियों से मात्र इतनी अभिलाषा थी कि वह अच्छा आचरण करें; किसी की भी निंदा न करें, सबकी सहायता करें और किसी की भी हानि न करें। यद्यपि वह पूर्व कर्मों की आंधी में से अपने भक्तों को निकाल कर उनको जीव और आत्मा का दर्शन कराते थे, वह उनको सदा सुकर्म और सदाचार करते हुए अध्यात्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी देते थे। उनमें सम्पूर्ण समर्पण और अप्रतिबंधित आस्था अति आवश्यक थी। "कल्याण कित्ता", गुरुजी कहते थे और भक्त को सदा उनका आशीर्वाद प्राप्त होता था। एक बार उन्होंने समझाया कि उनका आशीर्वाद केवल इस जन्म के लिए नहीं है, आत्मबोध (मोक्ष प्राप्ति) तक है।

गुरुजी ने कभी कोई प्रवचन नहीं किया; वह सदा व्यावहारिक आध्यात्मिकता के कर्ता थे, जैसा वह अक्सर कहा भी करते थे। उनके सन्देश उन शबदों के माध्यम से प्रसारित होते थे जो उनकी सभा में बैठे हुए भक्तों के ह्रदय को भावविभोर कर देते थे। अतः अनुयायी, गुरु शिष्य में स्थापित पवित्र सम्बन्ध बनने पर, उनके सन्देश सार्वजनिक या निजी रूप में ग्रहण कर लेते थे। यह पावन रिश्ता आपसी सम्बन्ध का मूल आधार था। वह भक्त का जीवन उस स्तर तक उठा देते थे जहाँ पर सुख, आपूर्ति और शांति सुगम होती हैं। शबद मार्गदर्शक बन जाते थे जो न केवल अनुयायी को उसका वास्तविक लक्ष्य बता देते थे, वह उसको उसकी वर्तमान स्थिति से भी अवगत करा देते थे।

गुरुजी ने ३१ मई २००७ को, शिष्यों का प्रिय, सदा गुलाब के पुष्पों सा सुगन्धित, शरीर त्याग दिया। एक प्रकार से यह एक शिक्षा ही थी। उन्होंने अनुयायियों को बता दिया था कि जीवन कितना क्षणभंगुर है। जिस भांति वह चले गए, उन्होंने यह पाठ सबके मनसपटल पर स्थायी तौर से छोड़ दिया है। अति सुन्दर बाग में स्थित, सबको मंत्रमुग्ध करने वाला, पवित्र "बड़ा मंदिर" उनकी आध्यात्मिक धरोहर है। वह इतना अद्वितीय है कि उसे पृथ्वी पर स्वर्ग ही कहा जा सकता है। और इतना शक्तिशाली है कि आशीर्वाद के लिए मात्र उसके निकट से गुजरना ही पर्याप्त है।

गुरु एवं शिष्य

गुरु कौन है और शिष्य कौन है ? माण्डूक्योपनिषद् में वर्णित कथा से यह सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है:

दो पक्षी, जो अविभाज्य मित्र हैं, एक वृक्ष पर बैठे हैं। एक उस पेड़ के फल खाता है, किन्तु दूसरा, देखने में अत्यंत तेजस्वी, बिना खाए देख रहा है। एक पक्षी पंख फड़फड़ाते हुए, एक टहनी से दूसरे पर उछलते हुए, फलों से आकर्षित, उनकी सुगंध से मुग्ध, अपनी चोंच हर जगह चला रहा है। खट्टे और मीठे, दोनों प्रकार के फल खाते हुए, चिड़िया को घृणा और लोभ, दोनों अनुभव होते हैं। परन्तु वह फल खाने में व्यस्त है।

स्थिर पक्षी अपने स्थान से दूसरे को देखता रहता है। उसकी दृष्टि उतनी ही एकाग्र और लीन करने वाली है, जितनी पहले की भूख।

पक्षी जिस वृक्ष पर बैठे हुए हैं, वह जीव के अस्तित्व का वृक्ष है। पक्षी क्रमशः स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के द्योतक हैं। प्राणी अपने आप को अपने भौतिक शरीर से पहचानता है और सदा अपना मनोरंजन करता रहता है। सूक्ष्म शरीर, ओजस्वी पक्षी, मात्र दर्शक है। वह दूसरी चिड़िया के उत्तेजित कर्मों और उनसे उत्पन्न सुख और दुःख को देख रहा है। जब वह पक्षी अपने मायावी अनुभवों से तृप्त हो जाता है वह दूसरे पक्षी को देखता है - अपने सूक्ष्म रूप को ... यही वह समय है जब अदृश्य गुरु और अनुयायी का सम्बन्ध स्थापित होता है।

गुरु प्रत्येक शिष्य की अंतरात्मा है। गुरु तो वह दर्पण है जिसमें अपनी छाया को देख कर अनुयायी अपने आपको जान सकता है। परन्तु इस ज्ञान अथवा अपने अंदर के गुरु के निकट आने से पूर्व, शिष्य को अपने वाह्य प्रस्फुटन की अति आवश्यकता है। क्योंकि हम कई जन्मों से अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं, आत्मज्ञान सरल नहीं है। हम इसके इतने आदी हो गए हैं कि हमें अपनी आतंरिक सत्यता से अवगत कराने के लिए, प्रोत्साहित करने के लिए एक वाह्य माध्यम की आवश्यकता होती है।

यही गुरु कृपा है। गुरु और उनकी कृपा में कोई अन्तर नहीं है। कृपा गुरु का विशिष्ट लक्षण है। और इसी प्रकार अपनी सब विशेषताएँ। निष्कामता, निडरता, सर्वज्ञानी, सर्वविद्यमान - वास्तव में, गुरु ईश्वर हैं जो आपके पास आए हैं। वह ही आपके निजी इष्ट, प्रिय मित्र, हृदय का सार, सर्वोच्च स्व की आंतरिक वास्तविकता हैं।

आपके गुरु आपको ध्यानपूर्वक देखते हैं, इतनी दयादृष्टि से, कि आप स्वतः ही उनको आदर देने को बाध्य हो जाते हैं। यह प्रेम का नियम है। इस अवस्था तक पहुँचने में भले ही कई जन्म लग जाएं किन्तु यहाँ, गुरु को स्पष्ट देखने वाली तुरीयावस्था तक पहुँचना निश्चित है।

जब गुरु वाह्य वास्तविकता बन कर आते हैं, हमारे लिए उनको समर्पण करना सहज हो जाता है। हम भाव को कल्पना नहीं कह सकते, भले ही वह कितने प्रकाशमान हों। गुरु के

वेश में साक्षात परमेश्वर हमारी देखभाल करने और संसार के मोह माया के बंधन से मुक्त कराने आते हैं। वह हमें हमारी सुषुप्तावस्था से जागृत करते हैं। वह निर्णय लेते हैं कि हम उनके साथ भक्ति भाव का संबंध बना सकते हैं। इस भक्ति के संबंध से हम शनैः शनैः फल खाने की क्रिया का त्याग कर देते हैं। हम आज्ञापालन और अनुशासन करना सीखते हैं। हम धैर्य और दया का मूल्य जानने लगते हैं। हममें विश्वास और श्रद्धा भावों की उत्पत्ति होती है। अंततः हम गुरु को समर्पण कर पाते हैं और उनके माध्यम से स्वयं ब्रह्म को आत्मसमर्पण करते हैं। हमारे जीवन में हो रहे हर कार्य में हमें गुरु और परमेश्वर की सहायता का आभास होने लगता हैं। हमारे अनुभवों में कोई अंकुश नहीं रहता। कई वस्तुएँ और लोग हमसे बिछुड़ जाते हैं। सब मनुष्यों की समानता हमारे सम्बन्धों का आधार होता है। हम उस संसार में प्रवेश करते हैं जहाँ कामना का कोई स्थान नहीं है, संतुष्टि निरर्थक है, और जहाँ जीवन में केवल गुरु की उपस्थिति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ऐसा अगाध प्रेम ही भक्ति है। जीवन में प्रतिदिन की उथल-पुथल और अन्य समस्याओं से निर्वाण के लिए गुरु पर पूरा विश्वास रहता है। हम उनको माता पिता सदृश मानते हैं। हमारे मित्र बन कर वह एकमात्र सान्त्वनादाता हैं। हम उनसे ऐसे अनुराग करने लगते हैं मानो हमारे अलावा कोई और प्रेमी नहीं है। इस सम्बन्ध का एक ही प्रयोजन है: आत्मबोध।

समुचित हल के अभाव में हम गुरुजी के पास पहुँचते हैं, कभी-कभार इच्छाओं और सनकी कामनाओं के साथ। गुरुजी हमें उन सबसे उभार देते हैं। गुरु को मानव रूप में समझना सरल है; यदि गुरु का व्यक्तित्व है तो प्रेम अर्पित करना भी सहज है; उनकी भाषा और मौन को भी समझना आसान है, परन्तु अस्तित्त्व की भाषा और मौन को समझना अति कठिन है।

निश्चित रूप से, पर धीरे धीरे, गुरू हमें तैयार करते हैं। यह अत्यंत मनमोहक यात्रा है - परमात्मा स्वयं गुरु का रूप धारण कर अवतरित होते हैं और आत्मा को स्वयं में ले जाते हैं।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध दो व्यक्तियों का तब तक होता है जब तक व्यक्तित्व दो हैं। जब शिष्य गुरु के साथ पूरा तालमेल बिठा लेता है, तब यह अंतर विलीन हो जाता है। नदी में प्रवाहित होता जल और मटके में रखा हुआ जल - दोनों समान होते हैं। और, तत्पश्चात, भेद समाप्त हो जाता है, जब मटके के पानी को नदी में फेंक देते हैं।

जन्म जन्मांतर से फल भोगने से पक्षी अपने स्वभाव से अनजान हो जाता है। उसे यह तक पता नहीं रहता कि उसके पंख हैं। वह मुक्ति की उड़ान के बारे में सोचता भी नहीं है। वह सोचता है कि फल खाना ही सबसे महत्वपूर्ण है। उसका जन्म केवल फल भोगने के लिए हुआ है। गुरु की अनुकम्पा से कभी कभी वह अपने उस मित्र को देख लेता है जो न खाकर संतुष्ट है। तब वह सोचने लगता है। उसे अपने पंखों का ज्ञान होता है। मित्र की कृपा

से, जब उसे उस मित्र में ही, अपने आत्मज्ञान की झलक मिलती है, वह उड़ने के बारे में सोचता है। और अचानक ही एक दिन वह उड़ जाता है।

यद्यपि पूरे क्रम को रूपकात्मक ढंग से चंद वाक्यों में कहा सुना जा सकता है, इस प्रक्रिया में कई जन्म लग सकते हैं। इसमें सबसे सुन्दर गुरु की अद्‌भुत प्रतिबद्धता है जिसमें वह समय समय पर भक्त को ऐसे बंधनों से बचाते हैं जिसमें उसका उलझ जाना प्रायः निश्चित है। गुरु तब हस्तक्षेप करते हैं जब शिष्य कष्ट में पड़ जाता है, जब वह कर्मों की भंवर में फँस जाता है। गुरु अनुयायी को बचाने के लिए अपनी सीमारहित शक्ति व्यय कर देते हैं।

ऐसे शिष्य गुरु का आभारी हो जाता है। एक प्रकार से गुरु उसकी आत्मा उसको वापस लौटाते हैं। यह तो श्रेष्ठ भेंट है, गुरु के अप्रतिबंधित प्रेम की पूरक। अनुयायी फिर भी हठ करता है। उसे गुड़गुड़ाने और बड़बड़ाने का कारण मिल जाता है। उसके लिए यह समझना कठिन हो जाता है कि गुरु उसके जीवन को क्यों इस प्रकार परिवर्तित कर रहे हैं।

जैसे यह कम नहीं है, गुरु प्रत्येक शिष्य से विभिन्न व्यवहार करते हैं। वह सबको समदृष्टि से परखते अवश्य हैं, पर जब हमारे प्रशिक्षण और अभ्यास की बात उठती है, हमारे आत्मज्ञान की यात्रा, व्यक्तिगत मनोस्थिति और कर्म के भिन्न रूपों का आंकलन करना आवश्यक हो जाता है। आपको शक्ति प्रदान करने वाला मिष्ठान मधुमेह के रोगी के लिए विष है। अकेले गुरु को यह ज्ञान है कि किसके लिए क्या उचित है।

यह हमारा सौभाग्य ही है जो हमें गुरु तक लेकर जाता है। पर फिर हम गुरु की बात न मानकर उनकी अवहेलना करते हैं। हम अपने आपको अवांछनीय और हास्यास्पद, अक्सर मूर्खतापूर्ण, परिस्थिति में डाल देते हैं। हम एक सर्कस में रहकर अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं, और जब गुरु आकर हमें निवृत करते हैं, हम वहीं पर रहना चाहते हैं। हमें अपने पिंजड़े पसंद हैं! हमें अपने सम्बन्ध स्थायी लगते हैं। उन पर ही हम क्लेश करते हैं। अतः हम मात्र अपनी मुक्ति को स्थगित कर देते हैं। किन्तु जब हमारे सांसारिक अनुभव वास्तविकता से परिचय कराते हैं, हममें अरुचि और भ्रम की उत्पत्ति होती है, हमारे अनुभवों का फल पक जाता है, तब हम माया की सूखी घास से अपना सिर ऊपर उठाते हैं और ढूंढने लगते हैं।

यदि हम सच्चाई से गुरुजी के बताए पथ पर चलें, तो हम शीघ्र ही समझ जाते हैं कि हम इस पृथ्वी पर अपनी कामुक इन्द्रियों की प्यास बुझाने या सांसारिक मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए नहीं आए हैं। गुरुजी इस संसार की निरर्थकता से परिचय कराते हैं: यह सब मोहमाया का जाल है। फिर हम उसका लालच छोड़ देते हैं। हमें आभास होता है कि इसके पुरस्कार और दण्ड अर्थहीन हैं, यह तो उसको दिए जाते हैं जिसका अस्तित्त्व ही नहीं है। हमें ज्ञान होता है कि सुख - दुःख और सब घटनाक्रम समय के ज्वारभाटे के साथ आते जाते रहते

हैं। शरीर की जन्म से मृत्यु तक की यात्रा में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे पकड़े रहना आवश्यक है।

गुरु तो वह पक्षी है जो मुक्ति का गीत गाता है। वह हमें आभास दिला देते हैं कि इसी जीवन में हमें संकल्प करके यह यात्रा पूरी करनी है। उनको तत्परता और शीघ्रता से समर्पण करने में ही भलाई है। समर्पण ही हमारे पंख हैं। अज्ञानता हमारा अनदेखा मार्ग है। नम्रता हमारी शक्ति है। प्रेम हमारा लक्ष्य है। आत्मा की पूर्णता की आकांक्षा, जिसके कारण हम अनेक बंधनों से बच पाते हैं, अंतिम मुक्ति से ही सिद्ध होती है। और वह मोक्ष केवल गुरु चरणों में समर्पण से ही प्राप्त होता है।